१८

कर्म प्रकृतियाँ और उनका जीवन के साथ संबंध

□ श्री श्रीचन्द गोलेछा

सुख-दु:ख अनुभव करते हुए मन, वचन, काया द्वारा जो क्रिया की जाती है, उसे भोग कहते हैं। भोग भोगने पर जो संस्कार आत्मा पर अंकित होते हैं, उन्हें कर्म कहते हैं। ये संस्कार पुनः जीवन पर प्रकट होते हैं, उसे कर्मोदय कहते हैं। जो मुख्य रूप से आठ प्रकार के हैं यथा—१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र, ८. अन्तराय।

१. ज्ञानावरणीय कर्म ५ प्रकार का है—

१. **मतिज्ञानावरणीय**—विषय भोगों में सुख है, ऐसी बुद्धि का होना मतिज्ञानावरणीय कर्म का फल है, यह विषय सुख छोड़ने में बाधक है।

२. **श्रुतज्ञानावरणीय**—भोग के प्रति रुचि का होना इसका फल है। इससे भोग बुद्धि पर नियन्त्रण नहीं हो पाता।

३. **अवधिज्ञानावरणीय**—मतिज्ञानावरणीय और श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के कारण जीवन में जो भोग की वृत्ति व प्रवृत्ति होती है, उस भोग की वृत्ति व प्रवृत्ति की यथार्थता का अंश मात्र भी आत्मिक ज्ञान न होना अवधिज्ञानावरणीय है।

४. **मनःपर्यायज्ञानावरणीय**—भोग भोगने में रसानुभूति से अलग नहीं कर पाना, इसका लक्षण है। इसके कारण कामना का अन्त नहीं होता है।

५. **केवलज्ञानावरणीय**—चित्त पर से घाति कर्मों का प्रभाव नष्ट न होना इसका फल है।

२. दर्शनावरणीय कर्म ६ प्रकार का है—

१. **चक्षुदर्शनावरणीय**—भोग बुद्धि से प्रभावित होकर दृश्यमान भोग्य पदार्थों से संबंध स्थापित करना, चक्षुदर्शनावरणीय का फल है।

२. **अचक्षुदर्शनावरणीय**—जिन पदार्थों से संबंध स्थापित किया है उनमें रुचि पैदा होना अर्थात् उनमें रस लेना अचक्षुदर्शनावरणीय के कारण होता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

३. **अवधिदर्शनावरणीय**—चक्षुदर्शनावरणीय और अचक्षुदर्शनावरणीय से उत्पन्न हुई विभिन्न अवस्थाओं को अनुभव न कर पाना अवधिदर्शनावरणीय है।

४. **केवलदर्शनावरणीय**—चैत्सिक ममत्व इसका लक्षण है।

५. **निद्रा**—इन्द्रियों के विषयों में रुचि के कारण भोग भोगने के लिये सामान्य रूप से मूर्छित होना अर्थात् अपनी विस्मृति होना निद्रा है।

६. **प्रचला**—निद्रित होने से बच नहीं पाना, बार-बार मूर्छित होना प्रचला है।

७. **निद्रा-निद्रा**—भोग प्राप्ति के लिये बार-बार लालायित रहना निद्रा-निद्रा है।

८. **प्रचला-प्रचला**—भोगेच्छा का संवरण न कर पाना प्रचला-प्रचला है।

९. **स्त्यानगृद्धि**—भोग भोगने की ऐसी तीव्र आकांक्षा होना जिससे अपना भान भूल जावे स्त्यानगृद्धि है।

३. वेदनीय कर्म दो प्रकार का है—

इन्द्रियों के विषयों में असाता का संवेदन करना असाता वेदनीय है और साता का संवेदन करना साता वेदनीय है।

४. मोहनीय कर्म दो प्रकार का है—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

१. **दर्शन मोहनीय**—भोग प्रवृत्ति पर बुद्धि का जो प्रभाव होता है वह दर्शन मोहनीय है। यह प्रभाव जीवन पर तीन प्रकार से प्रकट होता है—मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय।

मिथ्यात्व मोहनीय—सदा भोगों में लगे रहना, भविष्य में भी भोग मिलते रहें, ऐसी लालसा का होना इसका लक्षण है।

सम्यक्मिथ्यात्व—काम भोग अनाचरणीय है यह जानता हुआ, अनुभव करता हुआ भी उनसे विरत होने में असमर्थ होना और उनमें आनन्द मानते रहना सम्यक् मिथ्यात्व है।

सम्यक्त्व मोहनीय—त्याग वृत्ति में लग जाने पर भी पूर्ण रूप से भोगों से विरत नहीं होना इसका लक्षण है।

२. **चारित्र मोहनीय**—कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) से संयुक्त होकर भोग प्रवृत्ति में लग जाना चारित्र मोहनीय का लक्षण है। यह चार प्रकार का है यथा—

अनन्तानुबन्धी—मिथ्यात्व से प्रभावित भोग अवस्था को अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्रत्याख्यान—त्यागवृत्ति का न होना अप्रत्याख्यान है।

प्रत्याख्यानावरण—कषायों के नष्ट न होने तक त्यागवृत्ति की विभिन्न दशाओं को प्रत्याख्यानावरण कहते हैं।

संज्वलन—अर्थात् सामान्य कषाय श्रुत भोग प्रवृत्ति, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार मूल संज्ञाओं से विरत नहीं होना।

क्रोध—कामना उत्पन्न होने पर क्षुभित होना अर्थात् चित्त का कुपित होना क्रोध है।

मान—भोग भोगने की अभिलाषा का चित्त में बस जाना मान है। इसकी प्रतिक्रिया अहंकार रूप में प्रकट होती है।

माया—भोग भोगने में लग जाना माया है।

लोभ—भोग की लालसा का बना रहना लोभ है।

चारित्र मोहनीय के अनन्तानुबंधी आदि प्रत्येक भेद के साथ क्रोध, मान, माया, लोभ इनका संबंध रहता है।

नोकषाय—कषाय के सहायक कारणों को नोकषाय कहते हैं। सहायक कारणों के रहते कषायों का प्रभाव पूर्णतः नष्ट नहीं होता है। यह ९ प्रकार की है यथा—

१. **रति**—भोग काल में जो सुखानुभूति होती है उसे रति कहते हैं।

२. **हास**—उस सुखानुभूति से जो उल्लास होता है उसे हास कहते हैं।

३. **अरति**—इच्छा वासना के बनी रहने के कारण चित्त का खिन्न होना अरति है।

४. **शोक**—खिन्नता के साथ क्लेश उत्पन्न होता है, उसे शोक कहते हैं।

५. **भय**—भोग के साधनों के नाश की आशंका भय है।

६. **जुगुप्सा**—भोग साधनों के रक्षण की भावना अथवा भोग के साधनों के नष्ट होने के कारणों से घृणा करना जुगुप्सा है।

७. **पुरुष वेद**—भोगों को सामान्य प्रकार से वेदना (भोगना) पुरुष-वेद है।

८. **स्त्री वेद**—रसासक्ति सहित भोग प्रवृत्ति स्त्री वेद का लक्षण है।

९. **नपुंसक वेद**—मिथ्यात्व के लक्षणों सहित भोग में लगे रहना नपुंसक वेद का लक्षण है।

Jain Educationa International   For Personal and Private Use Only   www.jainelibrary.org

५. **आयु**—समग्र कर्म प्रकृतियों से प्रभावित जीवन की अवस्था आयु है। उसका वर्णन ४ प्रकार से किया गया है—

१. **नरकायु**—जिस जीवन में विषय भोगों की अत्यन्त चाह हैं, भोग इच्छा सदा बनी रहती है, अरति और शोक में निमग्न चित्त सदा अशान्त रहता है, यह नरकायु का लक्षण है।

२. **तिर्यंच आयु**—भोग से प्रवृत्त जीवन को तिर्यंच आयु कहते हैं जो विवेक जागृत होने पर कभी त्याग की ओर भी अग्रसर हो सकता है।

३. **मनुष्य आयु**—जिस जीवन में संकल्प की दृढ़ता होती है वह मनुष्य जीवन है। संकल्प की दृढ़ता के कारण भोग या त्याग में से किसी में लग जाने में पूर्ण समर्थ होना इसका लक्षण है।

४. **देव आयु**—त्याग की प्रवृत्ति होते हुए भी इच्छाओं से छुटकारा न पा सकना देव आयु का लक्षण है।

६. **नाम कर्म**—घाति कर्मों का प्रभाव मन, इन्द्रियों और देह पर प्रकट होकर जिस प्रकार की क्रिया, क्रियाशक्ति का प्रयोग जिस क्रम से प्रकट होकर भोगों की ओर प्रेरित करता, वह नाम कर्म है। नाम कर्म में आगत कर्म प्रकृतियों का आधार इस प्रकार प्रतीत होता है :—

गतियां मन के परिणामों की, जातियाँ इन्द्रियों की क्रियाओं की और शरीर, मन व इन्द्रियों के द्वारा होने वाली क्रियाओं के प्रकारों के द्योतक हैं। मन और इन्द्रिय की विभिन्न अवस्थाएँ संस्कारों के रूप में, इनकी निमित्त शक्तियाँ संहननों के रूप में, इनके विषय वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के रूप में, विषयों में मन और इन्द्रियों की क्रियाएँ अंगोपांगों के रूप में, अंगोपांगों का शुभाशुभ प्रवृत्ति या विहायोगति के रूप में वर्णन की गई हैं। आगे की प्रकृतियाँ चेतन के अगुरु-लघुत्व गुण के कारण क्रमशः प्रकट होने वाली अवस्थाओं की सूचक हैं। नाम कर्म की प्रकृतियां इस प्रकार हैं—

गति नाम कर्म—चित्त की सक्रियता का होना गति नाम कर्म है।

जाति नाम कर्म—इन्द्रियों की सक्रियता का होना जाति नाम कर्म है। यह एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियों की अपेक्षा पाँच प्रकार का है।

शरीर नाम कर्म—शरीर के अवयवों (क्रिया के साधनों) का कार्यरत होना शरीर नाम कर्म है। यह पाँच प्रकार का है—

औदारिक—देह का सामान्य रूप से कार्यरत होना औदारिक शरीर है।

वैक्रिय—इन्द्रियों का सामान्य से अधिक विकृत होकर कार्यरत होना वैक्रिय शरीर है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आहारक—संयम पालन करने पर चित्त की प्रमत्ता का कार्यरत होना आहारक शरीर है।

तैजस—कर्मशक्ति चेतनशक्ति का प्रभाव तैजस शरीर है।

कार्मण—पूर्व संस्कारों की जागृति का प्रभाव कार्मण शरीर है।

बंधन नाम कर्म—उपर्युक्त पांचों शरीरों में से जो शरीर एक दूसरे से संयुक्त होकर बंधन को प्राप्त होते हैं, वह बंधन नाम कर्म है।

संघातन—पांचों शरीरों की संयुक्त कार्य शक्ति संघातन है।

संस्थान—संयुक्त कार्य शक्ति जीवन पर जिस प्रकार का प्रभाव प्रकट करती है, वह संस्थान है। यह छः प्रकार का है—

हुण्डक—अत्यन्त तीव्र अभिलाषाओं के साथ भोग प्रवृत्तियों में (ग्राम शूकर की तरह) लगे रहने की वृत्ति हुण्डक संस्थान का लक्षण है।

वामन—भोग वृत्ति का कुछ कम होना, अल्प होना वामन है।

कुब्जक—अल्प आर्जव, मार्दव का प्रकट होना कुब्जक संस्थान है।

स्वाति—आत्मलक्षी होना स्वाति संस्थान है।

न्यगरोध परिमण्डल—भोग वृत्तियों का निग्रह करने की अवस्था न्यगरोध परिमण्डल संस्थान है।

समचतुरस्र—समान भाव का होना समचतुरस्र संस्थान है।

नोट :—उपर्युक्त संस्थानों के अर्थ 'शब्द कल्पद्रुम' कोष के आधार पर किये गये हैं।

अंगोपांग—संस्थानों से प्रभावित होकर औदारिक, वैक्रिय या आहारक शरीर का कार्यरत होना।

संहनन—अंगोपांग की क्रिया शक्ति संहनन है। वह ६ प्रकार का है—वज्र ऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलिका और सुपाटिका। ये सभी संस्थान पुरुषार्थ के वाचक हैं।

वर्ण, गंध रस, स्पर्श—संहनन के अनुसार पांचों इन्द्रियों के विषयों में लगा रहना वर्ण, गंध, रस, स्पर्श कहा गया है।

गत्यानुपूर्वी—इन्द्रियों के विषयों में तीव्रता या मंदता के साथ लगे रहने की वृत्तियों के संस्कारों का होना गत्यानुपूर्वी है।

विहायोगति—अशुभ से शुभ की ओर, और शुभ से अशुभ की ओर जाने के संस्कारों को क्रमशः शुभ-अशुभ विहायोगति कहते हैं।

अगुरुलघु—चेतन गुण का प्रकट होना अगुरुलघु है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उपघात—कर्म चेतना के पश्चात् इन्द्रियों का संचरण होकर भोग वस्तु से सम्बन्ध स्थापित करने को उपघात नाम कहते हैं।

पराघात—भोग वस्तुओं से संबंध स्थापित होने पर विषयों की ओर आकर्षित होना पराघात है।

उच्छ्वास—भोग पदार्थों में आकर्षित होने के कारण भोग पदार्थों को प्राप्त करने के लिये उत्सुक होने को उच्छ्वास कहते हैं।

आतप—उत्सुक होने पर भोगने की आकांक्षा का प्रकट होना जिससे देह में ताप होता है, आतप नाम है।

उद्योत—प्रकट हुई आकांक्षाएं पूर्ण करने को उद्यत या उत्सुक होना उद्योत नाम कर्म है।

त्रस, स्थावर, अशुभ और शुभ—उपघात की अवस्था में इन्द्रियों का बाह्य रूप से कार्य रूप में रत होना त्रस नाम कर्म है, आंतरिक संचरण स्थावर नाम कर्म है, शुभ या अशुभ में लगने के संस्कार शुभ, अशुभ प्रकृति है।

बादर, सूक्ष्म, सुभग, दुभग—पराघात की अवस्था में बाह्य रूप से कार्य-रत होना बादर नाम और सूक्ष्म रूप से कार्यरत होने के संस्कार सूक्ष्म नाम कर्म है। पराघात अवस्था में नियंत्रण करने के संस्कार सुभग और नियन्त्रण नहीं करने के संस्कार को दुभग नाम कर्म कहते हैं।

पर्याप्त-अपर्याप्त—सुस्वर-दुस्वर उच्छ्वास अवस्था अर्थात् भोग भोगने के लिये पर्याप्त रूप से या अपर्याप्त रूप से उत्सुक होना पर्याप्त-अपर्याप्त नाम कर्म है। उस पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था में शुभ की ओर या अशुभ की ओर जाने की अवस्था सुस्वर-दुस्वर है।

प्रत्येक साधारण, आदेय-अनादेय—उच्छ्वास अवस्था में प्रत्येक भोग्य वस्तु के प्रति उत्पन्न आकांक्षा प्रत्येक है और सामान्य आकांक्षा उत्पन्न होना साधारण है। आकांक्षाओं का नहीं करना आदेय है और आकांक्षाओं को करना अनादेय है।

स्थिर-अस्थिर, यशकीर्ति, अयशकीर्ति—उद्योत अवस्था में संस्कारों के अनुसार प्रवृत्ति होना अस्थिरता है और भोगों में प्रवृत्ति न होना स्थिरता है। शुभ प्रवृत्तियों में लगना यशकीर्ति है और मन को नियन्त्रित नहीं करना अयशकीर्ति है।

निर्माण—उक्त प्रकृतियों को नियमित करना निर्माण है।

तीर्थंकर—प्रकृतियों से उपरत होने की वृत्ति तीर्थंकर नाम कर्म है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

७. **गोत्र**—नाम कर्म को सर्व उत्तर प्रकृतियों की सम्मिलित शक्ति का प्रभाव देह की क्रियाओं पर प्रकट होता है, वह गोत्र कर्म है। यदि वे दैहिक क्रियाएँ सद् प्रवृत्तियों के रूप में हैं तो वह उच्च गोत्र है। दुष्प्रवृत्तियों के रूप में तो वह नीच गोत्र है।

८. **अंतराय**—आयु, नाम, गोत्र इनका उदय (वेदन होने पर भोग की कामना का पैदा होना) अंतराय कर्म है। भोगों को प्राप्त करने की अभिलाषा दानान्तराय है, भोगों के प्रति रुचि होने की अवस्था लाभान्तराय है, भोगने की अभिलाषा भोगान्तराय है, बार-बार भोगने की अभिलाषा, लालसा का बना रहना उपभोग अन्तराय और भोगों के प्रति पुरुषार्थ करने की वृत्ति वीर्यान्तराय है। भोगों के भोगने की इच्छा या वासना नहीं रहने पर अंतराय कर्म क्षय हो जाता है।

इस लेख में आयु, नाम, अन्तराय आदि कर्मों की मूल व उत्तर प्रकृतियों की परिभाषाएँ परम्परागत परिभाषाओं से भिन्न रूप में प्रस्तुत की गई हैं। इनका आधार यह है कि देह का हलका, भारी, कठोर, नर्म, सबल-निर्बल, सुन्दर-असुन्दर होना, देह का काला, गोरा आदि वर्णों का होना, सुगंध-दुर्गन्ध युक्त होना, मीठा, खट्टा आदि आस्वादन करना आदि की उपलब्धि कर्म बन्ध के कारण नहीं है। अपितु इन्द्रिय और मन की प्रवृत्तियाँ व क्रियाएँ ही कर्म बन्ध के कारण होती हैं। इसी प्रकार आयु की कमी-अधिकता भी कर्म बन्ध का फल नहीं है अपितु आयु जीवन की एक अवस्था है तथा भोगोपभोग संबंधी वस्तुओं का मिलना न मिलना सामान्य रूप से अन्तराय रूप है, परन्तु अन्तराय कर्म नहीं है।

आतम-ध्यान

राग—जंगला

मैं निज आतम कब ध्याऊँगा।
रागादिक परणाम त्याग कै, समता सौं लौ लगाऊँगा ॥ मैं निज० १ ॥

मन वच काय जोगथिर करकै, ज्ञान समाधि लगाऊँगा।
कब हौं श्रेणि चढ़ि ध्याऊँ, चारित मोह नशाऊँगा ॥ मैं निज० २ ॥

चारों करम घातिया हन करि, परमातम पद पाऊँगा।
ज्ञान दरश सुख बल भण्डारा, चार अघाति वहाऊँगा ॥ मैं निज० ३ ॥

परम निरंजन सिद्ध बुद्ध पद, परमानन्द कहाऊँगा।
'द्यानत' यह सम्पत्ति जब पाऊँ, बहुरि न जग में आऊँगा ॥ मैं निज० ४ ॥

—**द्यानतराय**

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org